**ओ३म्**

**‘दिग्भ्रमित विश्व के लिए वेदों की उपेक्षा अहितकर एवं हानिकारक’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मनुष्य जीवन को संसार के वेदेतर सभी मत अद्यावधि प्रायः समझ नहीं सके हैं। यही कारण है कि यह जानते हुए कि सत्य एक है, संसार में आज के आधुनिक व उन्नत युग में भी एक नहीं अपितु सैकड़ो व सहस्राधिक मत-मतान्तर प्रचलित हैं जिनकी कुछ बातें उचित व अधिकांश असत्य एवं अज्ञान पर आधारित हैं। वेदमत, वैदिक धर्म अथवा आर्यसमाज वेदप्रचार मिशन के अतिरिक्त हमें संसार में ऐसा कोई धार्मिक व सामाजिक मत दृष्टिगोचर नहीं होता जो अपने मत की सभी मान्यताओं की समीक्षा करता हो और अन्य मतों की समालोचना व समीक्षा को ध्यान में रखकर उनकी सत्यता को जानने व तर्क व युक्तियों सहित उदाहरणों सहित उनके सत्य होने की पुष्टि करने का प्रयास करता हो। यही कारण है कि वेदेतर सभी मत मध्यकालीन अज्ञान व अन्धविश्वासों से भरे हुए हैं जिन्हें यह तक ज्ञात नहीं है कि ईश्वरोपासना का उद्देश्य क्या है व इसकी सही व सर्वमान्य विधि क्या है वा हो सकती है। इसे आज के युग का सबसे बड़ा आश्चर्य ही कहेंगे। एक बच्चा स्कूल में प्रविष्ट कराया जाता है तो वह वहां अपने अध्यापकों से जो पढ़ाया जाता है उसे सीखता है। अध्यापक भी उससे पूछते हैं कि उसे समझ में आया या नहीं। उसकी परीक्षा भी ली जाती है और जितना पढ़ाया गया होता है उसे जान लेने वा समझ लेने के बाद ही उसे उससे ऊपर की कक्षा में प्रोन्नत कर आगे के विषयों का ज्ञान दिया जाता है। विद्यार्थी को अपने अध्यापकों से प्रश्न पूछने, शंका प्रस्तुत करने व उसके सन्तोषप्रद उत्तर पाने का अधिकार होता है परन्तु जीवन के सबसे प्रमुख अंग जिससे हमारा वर्तमान व भावी जीवन सहित परजन्म की उन्नति वा अवनति जुड़ी हुई है, उस पर शंका करने व उत्तर पाने का अधिकार किसी मत-पंथ में नहीं है। ऋषि दयानन्द एक पौराणिक मत के अनुयायी माता-पिता के यहां जन्में थे। उन्होंने पहले अपने माता-पिता-आचार्यों व बाद में देश के सभी विद्वानों से मूर्तिपूजा की निस्सारता पर प्रश्न किये, परन्तु आज तक कोई विद्वान व आचार्य उनके प्रश्नों का समाधान नहीं कर पाया। ऐसा होने पर भी देश-विदेश में बड़ी संख्या में लोगों द्वारा पाषाण, लौह व अन्य धातुओं की मूर्तियों की पूजा जारी है। मूर्तिपूजा न केवल वेद विरुद्ध है अपितु इससे इस संसार को बनाने, चलाने व यथासमय प्रलय करने वाले ईश्वर, जो घट-घट का वासी, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी व सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसके ज्ञान वेदों में दी गई शिक्षा वा आज्ञा की अवज्ञा होती है। देश व विश्व में प्रचलित प्रायः सभी मतों की न्यूनाधिक यही अवस्था है। आर्यसमाज द्वारा प्रचारित वेद से इतर किसी मत, पंथ, सम्प्रदाय व तथाकथित धर्म आदि को यह जानने की चिन्ता ही नहीं है कि उनके मतों की मान्यताओं को जीवन में मानने व न मानने व उसके कुछ अनुकूल व विपरीत आचरण करने वालों की मृत्यु के बाद क्या अवस्था, दशा, गति, सद्गति व दुर्गति, उन्नति व अवनति होती है?

 महर्षि दयानन्द के जीवन में उनके सामने ऐसे अनेक प्रश्न थे जिन पर विचार कर ही उन्होंने अज्ञान, अविद्या, अन्धविश्वास, कुरीति, मिथ्या परम्पराओं पर विचार किया था और अथक प्रयासों के बाद उन्हें वेद मत के रूप में एक सच्चा, अविद्या व अज्ञान से सर्वथा मुक्त, सद्ज्ञान व सदाचरणों से युक्त जीवन को उन्नत करने वाला, मनुष्य जीवन में अभ्युदय व मृत्यु होने पर मोक्ष प्रदान करने वाला मत ज्ञात व प्राप्त हुआ था। ऋषि दयानन्द को सच्ची ईश्वरोपासना से विश्व का कल्याण करने की ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त हुई थी। इसी भावना से उन्होंने सन् 1863 व उसके बाद अपनी मृत्युपर्यन्त वेद की शिक्षाओं के प्रचार व प्रसार के कार्य किये जिसमें मूर्तिपूजा व अन्य विषयों पर अनेक मत-मतान्तर के लोगों से शास्त्रार्थ, देशाटन कर लोगों को सदुपदेश से लाभान्वित करना, आर्यसमाज की स्थापना, सत्यार्थप्रकाश सहित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन, समाज सुधार व देश को स्वतन्त्र कराने की प्रेरणा सहित जीवन के सभी धार्मिक व सामाजिक क्षेत्रों में अपूर्व योगदान दिया। उन्होंने जो कार्य किया वैसा महाभारत काल के बाद देश व विश्व के किसी महापुरुष ने नहीं किया। इसे देश व समाज की विडम्बना ही कह सकते हैं कि मत-मतान्तरों को मानने वाले सभी लोग अपने अपने मत के आचार्यों की अच्छी व अज्ञानता की बुरी बातों को तो ग्रहण कर लेते हैं परन्तु सत्यमत वेद, धर्म, विचार, सिद्धान्त, आचरण आदि को जानने की किसी में विशेष उत्सुकता व पिपासा नहीं देखी जाती। यदि ऐसा होता तो आज विश्व में एक ही मत व धर्म होता जो केवल सत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों पर ही आधारित होता जिसे जानने व अपनाने का प्रयास ऋषि दयानन्द ने अपने जीवनकाल में किया था। सफलता मिलने पर ऋषि दयानन्द ने देश व विश्व के लोगों का कल्याण करने के लिए वेदों के प्रचार के निमित्त आर्यसमाज की स्थापना कर सत्यार्थप्रकाश एवं वेदभाष्य सहित सत्य ज्ञान युक्त अनेक ग्रन्थों की रचना की जिससे देश देशान्तर के लोगों का युग-युगान्तरों तक मार्ग दर्शन हो सके।

सत्य पर आधारित प्रमुख धार्मिक व सामाजिक मान्यतायें क्या हैं जिनसे मनुष्य अभ्युदय व मोक्ष को प्राप्त होता है? इसके लिए सभी मत-पन्थों के ग्रन्थों सहित वेद व वैदिक साहित्य की परीक्षा करना अपेक्षित है। यह कार्य ऋषि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश एवं अन्य ग्रन्थ लिख कर किया। अपनी शिक्षा पूर्ण करने तक उनका उद्देश्य सत्य ज्ञान की खोज करना था। अपना अध्ययन पूरा होने पर उन्होंने पाया संसार में वेद ज्ञान के मूल स्रोत हैं। उन्होंने वेदों की परीक्षा की तो पाया कि वेद सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से उत्पन्न हुए थे। वेद ईश्वर का निज ज्ञान है जो वह हर कल्प में सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को उत्पन्न कर उन्हें एक एक वेद का ज्ञान देता है। यह चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं और जिन ऋषियों को यह ज्ञान दिया जाता है उनके नाम क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा हैं। चारों वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तकें हैं। इनमें इतिहास व सृष्टिक्रम के विपरीत कोई बात नहीं है। वेद बतातें हैं कि इस संसार को बनाने, चलाने व प्रलय करने वाली एक सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ व पूर्व कल्पों में अनन्त बार सृष्टि रचना करने वाली एक अनुभवी सत्ता ‘ईश्वर’ है। ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप, गुण, कर्म व स्वभाव का ज्ञान भी वेदों में यथार्थ रूप में वर्णित हैं। वेदों मत-मतान्तरों के ग्रन्थों की तरह एक हजार व दो हजार वर्ष पूर्व की बातों का इतिहास व कहानी किस्से नहीं हैं अपितु कल्प-कल्पान्तर में एक समान व एक रस रहने वाला सद्ज्ञान है। वेदों का ईश्वर सर्वज्ञ है। कभी भूल नहीं करता और न कभी किसी के प्रति पक्षपात ही करता है। वह आर्यों की संख्या बढ़ाने के लिए हिंसा की प्रेरणा नहीं देता और न मनुष्य जाति को मत-मतान्तरों में बांटता है। उसका ज्ञान व शिक्षायें सार्वभौमिक, सर्वकालिक एवं मनुष्य मात्र सहित प्राणियों के हित के लिए हैं। वेदों के अनुसार श्रेष्ठ व शुभ कर्म वा आचरण करने वाले लोग आर्य होते हैं और इसके विपरीत अशुभ कर्म व आचरण करने वाले अनार्य, दुष्ट, राक्षस व पिशाच होते हैं।

जीवात्मा स्वभावतः अल्पज्ञ है और वेदों का अध्ययन कर विद्वान बनता है। वेदों की शिक्षायें ऐसी हैं जिनका आचरण करने से देश व संसार में सुख व शान्ति की वृद्धि होती है। वेदों के अध्ययन व आचरण से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक विकास वा उन्नति होती है। परिवार में प्रेम व सौहार्द की वृद्धि होने से सभी सदस्यों की सार्वत्रिक उन्नति होती है। वेद मनुष्यों को युवावस्था में एक पुरुष का एक स्त्री से एक बार ही विवाह करने का विधान करते हैं। वेदों के अनुसार समाज को श्रेष्ठ समाज बनाने के लिए मनुष्य के गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार वर्ण व्यवस्था का विधान है जिसका जन्म की जाति आदि से कुछ लेना देना नहीं होता। वेद किसी मनुष्य को उसके ज्ञान व कर्मों के अनुसार महान् व पतित मानते हैं। वेद मूर्तिपूजा का विधान नहीं करते अपितु ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना का विधान करते हैं जिसका विस्तार महर्षि पतंजलि के योगदर्शन में मिलता है। अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, बहुपत्नीप्रथा, परदा-प्रथा, असंयमित जीवन व व्यभिचार, पालन पोषण की क्षमता से अधिक सन्तान को निषिद्ध करते हैं। वेद के अनुसार सभी मनुष्यों व अन्त्यजों तक को अन्य ब्राह्मण आदि के समान वेदों का अध्ययन करने का पूरा अधिकार है। किसी भी प्रकार की अस्पर्शयता, छुआछूत व दूसरों के प्रति असमानता का व्यवहार वेदों के अनुसार निषिद्ध हैं। युवा विधवाओं का पुनर्विवाह आपद्धर्म है। वेद ईश्रोपासना वा ब्रह्मयज्ञ सहित देवयज्ञ अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ सहित बलिवैश्वदेवयज्ञ का विधान भी करते हैं। इन्हें करने से देश व समाज उन्नत होता है और मनुष्य के शुभ कर्मों में वृद्धि होने से ईश्वर के द्वारा उसको जन्म-जन्मान्तरों में सुख मिलने सहित मोक्ष की भी यथासमय प्राप्ति होती है। वेदों के अध्ययन व आचरण से मनुष्य अंधविश्वासों एवं पाखण्डों से मुक्त होकर सच्चा मानव जीवन व्यतीत करने में सक्षम होते हैं।

संसार में सुख, शान्ति, सबका कल्याण व उन्नति का वातावरण बनता है। सब एक दूसरे की सुख समृद्धि सहित दुःखों में सहायक होते हैं। वेदों का ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार आचरण करने से मनुष्य स्वस्थ रहता है व उसके बल व आयु में भी वृद्धि होती है। ऐसे अनेक लाभ वेदों के अध्ययन व तदवत् आचरण करने से प्राप्त होते हैं जबकि मत-मतान्तरों के ग्रन्थों को पढ़ने से बुद्धि व ज्ञान की वृद्धि न होकर मनुष्य मध्यकालीन अविद्या व अज्ञान से ग्रस्त होकर अनुचित व अनावश्यक अनेक कार्यों को करके स्वयं दुःखी होते हैं व देश व समाज को भी दुःखी करतं हैं। आज संसार में जो अशान्ति, प्रतिस्पर्धा, छीना-छपटी, गलत तरीकों से सम्पत्ति में वृद्धि, निर्दोषों की हत्या वा हिंसा, अन्याय, शोषण, येन-केन-प्रकारेण सीएम व पीएम बनने व सत्ताधीश बनने की होड़, कर्तव्य की उपेक्षा व अवहेलता, अनाचार, अत्याचार व भ्रष्टाचार आदि की बातें हैं वह सब मत-मतान्तरों की अविद्या व वेदों के अप्रचार के कारण ही हैं। वेदानुसार आचरण करने से मनुष्य का वर्तमान जीवन उन्नत होता व सुधरता है साथ ही ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र, परोपकार, दान व शुभकर्मों से मृत्योपरान्त जन्म-मरण के बन्धनों व दुःखों से मुक्ति सहित मोक्ष की प्राप्ति भी होती है जो कि अन्य किसी मत-मतान्तर की मान्तयताओं पर आचरण करने से नहीं होती। वेदाध्ययन करने वाला प्रत्येक व्यक्ति वेदों के कथन को ज्ञान व विज्ञान से पूर्ण होने के कारण उस पर विश्वास करता है न कि बाबा वाक्यं प्रमाणम् के कारण। वेदों में मध्यकालीन अज्ञानता व इनकी स्वहित व परहानि जैसी शिक्षायें नहीं हैं। अतः सभी को सब मतों का अध्ययन सहित वेदों का अध्ययन कर वेदों को अपनाना चाहिये जिससे उनका यह जन्म व परजन्म उन्नत व सफल हो सके। यदि हमने वेदाध्ययन कर विवेक प्राप्त कर सत्य का आचरण व असत्य का त्याग नहीं किया तो हमें इसके परिणाम इस जन्म सहित भविष्य में अनेक नीच योनियों में जन्म लेकर भोगने पड़ेगे। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘ईश्वरोपासना से मनुष्य जीवन के अन्तिम लक्ष्य**

**ईश्वर-साक्षात्कार वा मोक्ष को प्राप्त होता है’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

हम मनुष्य हैं इसलिए हमें मनुष्योचित कार्य ही करने अभीष्ट हैं। मनुष्योचित कार्यों में मुख्य कार्य ज्ञान की प्राप्ति और तदनुसार कर्म करना हमारा कर्तव्य सिद्ध होता है। हम समझते हैं कि कोई मनुष्य व विद्वान, किसी भी मत व सम्प्रदाय का क्यों न हो, यह नहीं कह सकता कि ज्ञान प्राप्ती और तदनुकूल कर्म व आचरण करना मनुष्यों का कर्तव्य नहीं है। अब यदि यह बात सर्वमान्य है तो फिर हमें अपने जीवन का अवलोकन अर्थात् आत्मालोचन कर यह जानना है कि क्या हमने ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक कर्तव्यों का पालन किया है। हम समझते हैं कि यदि इसका गम्भीरता से विचार व चिन्तन करें तो हमें लगेगा कि हमसे बहुत भूलें व त्रुटियां हुई हैं। यद्यपि हमारे जीवन का बहुमूल्य समय निकल चुका है परन्तु फिर भी यदि हम सम्भल जायें तो आने वाले समय में हम अपने जीवन में काफी सार्थक व सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं। इससे हमारा यह जीवन भी सुधरेगा और परजन्म में भी हमारी उन्नति होगी, इसकी स्वीकृति हमारी आत्मा सहित हमारे ऋषियों के तर्क व युक्तिसंगत विचारों से हमें मिलती है।

 ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य सत्य व असत्य का विवेक कर जीवन को सत्य के मार्ग पर चलाना है और जीवन में जो असत्य व अज्ञानयुक्त बातें व आचरण हैं, संस्कार व क्रियायें हैं, उन्हें छोड़ना है। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य भी है। ज्ञान प्राप्ती गुरु से हुआ करती है। गुरु वह होता है जो पूर्ण व अधिकांश विषयों का ज्ञान रखता हो तथा जिसमें दूसरे मनुष्यों के कल्याण की भावना हो। ऐसे गुरु को प्राप्त होकर हम अपना अज्ञान व अविद्या को दूर कर सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने भी इसी प्रकार प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरु स्वामी विरजानन्द जी के चरणों में बैठकर व उनकी सेवा-सुश्रुषा कर उनसे ज्ञान प्राप्त किया था। इसी सेवा, गुरु की निकटता एवं अध्ययन से वह आज विश्व के सर्वोपरि गुरु के आसन पर प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने संसार को वह ज्ञान दिया जिसे संसार भूल चुका था। मिथ्या ज्ञान सारे संसार में व्याप्त फैला हुआ था। उन्होंने न केवल सद्ज्ञान ही दिया अपितु मिथ्याज्ञान की समीक्षा कर उसे अनावश्यक और जीवन के लिए हानिकारक सिद्ध किया। सत्यार्थप्रकाश के रूप में उनके द्वारा दिया ज्ञान आज अनेक लोगों के घरों में विद्यमान है।

 संसार में ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु किसे बनाया जाये? ऐसी कौन सी पुस्तक है जिसमें मनुष्यों के जीवन के उद्देश्य का ज्ञान कराने सहित उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन भी है। इन प्रश्नों पर विचार करने पर सच्चा गुरु वह सिद्ध होता है जो स्वामी विरजानन्द सरस्वती और स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान ज्ञानी व विद्वान हो हो। ईश्वरोपासक होने के साथ समाधि को भी प्राप्त हो तथा जिसमें समाज व विश्व के कल्याण की भावना भी हो। ऐसा गुरु तो सम्भवतः संसार में मिलना कठिन है परन्तु ईश्वरीय ज्ञान वेद, उपनिषद्, दर्शन, विशुद्ध मनुस्मृति, ऋषि दयानन्द जी के ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि का अध्ययन कर मनुष्य अपने उद्देश्यों को जानकर इनमें वर्णित साधनों को आचरण में लाकर अपने जीवन को सफल कर सकता है। पूर्ण सफलता ईश्वर के साक्षात्कार होने पर प्राप्त होती है। इसी के लिए हमारे वेदज्ञ ऋषियों व विद्वानों सहित ऋषि दयानन्द ने ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना के रूप में ब्रह्मयज्ञ अर्थात् ईश्वरोपासना, देवयज्ञ आदि पंच महायज्ञों का विधान किया है। उपासना जिसमें ईश्वर की स्तुति व प्रार्थना भी अनिवार्य रूप से जुड़ी हुईं है, को ऋषि दयानन्द के शब्दों को जान लेना उचित होगा। सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में प्रश्नोत्तर शैली में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए या नहीं? (उत्तर) करनी चाहिए। (प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा? (उत्तर) नहीं। (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना? (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है। (प्रश्न) क्या है? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उस के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। (प्रश्न) इनको स्पष्ट करके समझाओ। इसके उत्तर में ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद का 40/8 मन्त्र प्रस्तुत किया है और इसका अर्थ करते हुए ईश्वर की स्तुति के विषय में लिखा है कि वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। यह सगुण स्तुति अर्थात् परमेश्वर के जिस-जिस गुण को बोलकर, जानकर व मन में वैसे भावों को बनाकर स्तुति करना वह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण व जन्म नहीं लेता, जिस में छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिस में क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि जिस-जिस राग, द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर को स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इस से फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण है वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होंवे। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण-कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र को नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

 प्रार्थना का सत्यार्थप्रकाश के सप्तम् समुल्लास में उल्लेख कर ऋषि ने आठ वेदमंत्र दिये हैं और उनके अर्थ किये हैं। हम प्रथम तीन प्रार्थना मंत्रों का ही अर्थ यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। वह लिख्षते हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आप की कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते है उसी बुद्धि से युक्त हम को इसी वर्तमान समय में आप बुद्धिमान् कीजिये।।1।। आप प्रकाशस्वरूप हैं, कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रम युक्त हैं, इसलिये मुझ में भी कृपाकटाक्ष से पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं इसलिये मुझ में भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामथ्र्ययुक्त हैं, मुझ को भी पूर्ण सामथ्र्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं, मुझ को भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा, स्तुति और स्व-अपराधियों का सहन करने वाले हैं, कृपा से मुझ को भी वैसा ही कीजिये।।2।। हे दयानिधे आप की कृपा से जो मेरा मन जागते में दूर-दूर जाता दिव्यगुणयुक्त रहता है, और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता या स्वप्न में दूर-दूर जाने के समान व्यवहार करता है, सब प्रकाशकों का प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसंकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का संकल्प करनेहारा होवे। किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे।।4।। अन्य मन्त्रों के अर्थों के लिए पाठक कृपया सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करने की कृपा करें। प्रार्थना विषय का समापन करते हुए ऋषि लिखते हैं कि इसी प्रकार परमोश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उस को गुड़ प्राप्त वा उस को स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उस को शीघ्र या विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।

उपासना का उल्लेख कर ऋषि कहते हैं कि जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिस ने लगाया है उस को जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है। उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने ओर उस को सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामीरूप से प्रत्यक्ष के लिए जो-जो काम करना होता है वह-वह सब करना चाहये। **“स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश”** में भी ऋषि ने स्तुति, प्रार्थना व उपासना पर संक्षेप से प्रकाश डाला है। स्तुति के विषय में ऋषि कहते हैं कि ईश्वर का गुण कीर्तन करना, उसके सत्यस्वरूप का श्रवण और ज्ञान होना स्तुति है जिसका फल ईश्वर से प्रीति आदि होते हैं। प्रार्थना वह होती है कि जिसमें अपने सामथ्र्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं, उसके लिये याचना करना प्रार्थना है और इसका फल उपासक में निरभिमानता का होना आदि होता है। उपासना में ईश्वर के पवित्र गुण, कर्म व स्वभाव को जानकर उनके अनुरूप अपने गुण, कर्म व स्वभाव करना होता है। ईश्वर को सर्वव्यापक और अपनी आत्मा को ईश्वर से व्याप्य जान कर ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है। इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है। इससे ज्ञात होता है कि उपासना का चरम लक्ष्य ईश्वर का साक्षात्कार वा प्रत्यक्ष अर्थात् समाधि अवस्था में उसका निभ्र्रान्त वा निश्चयात्मक ज्ञान है।

 ईश्वर की उपासना से मनुष्य में मनुष्योचित दिव्य गुणों का आधान होता है। आत्मा के मल दूर होते हैं। आत्मा पवित्र व निर्मल होकर ईश्वर की मित्रता को प्राप्त होता है। जीवात्मा का ज्ञान बढ़ता व उसमें अज्ञान का नाश होता है। उपासना में ईश्वर की वेद मन्त्रों व उसके अर्थां व भावों के अनुरूप ईश्वर की स्तुति व प्रार्थना की जाती है। स्तुति करने से ईश्वर से प्रीति हो जाती है और प्रार्थना से जीवात्मा कें अहंकार का नाश होता है। ईश्वरोपासना के साथ मनुष्य के लिए देवयज्ञ अग्निहोत्र करना भी आवश्यक है। इससे मनुष्य का व्यक्तिगत लाभ होने सहित समाज व देश भी लाभान्वित होते हैं। ईश्वरोपासना और देवयज्ञ मनुष्य को सत्य के ग्रहण में प्रेरित व प्रवृत्त करते हैं और असत्य, अज्ञान व अविद्या को दूर करते हैं। मनुष्य अविद्या से मुक्त होकर विद्या से युक्त होता है। सभी लोग यदि सच्चे ईश्वरोपासक व याज्ञिक हो जायें तो इससे समाज अज्ञान, अन्धविश्वास, अविद्या, मिथ्याविश्वासों व परम्पराओं सहित पाप व कुटिलता के आचरणों से मुक्त हो सकता है। ऐसा होने पर आदर्श मनुष्य जीवन बनकर आदर्श समाज की रचना होती है। अन्ततः उपासक मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार, उसका प्रत्यक्ष व निभ्र्रान्त ज्ञान होकर ईश्वर विषयक व अन्य सभी प्रकार के भ्रम दूर हो जाते हैं। मृत्यु होने तक जीवनमुक्त अवस्था में रहता है और मृत्यु होने पर जन्-मरण से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है। यही मनुष्य जीवन का अन्तिम चरम लक्ष्य है। इसी के साथ इस चर्चा को समाप्त करते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**-वैदिक साधन आश्रम तपोवन में आचार्य आशीष दर्शनाचार्य का व्याख्यान-**

**“सभी आर्य बन्धुओं को प्रभावशाली वक्ता व वेद प्रचारक**

**बनने का अभ्यास करें: आचार्य आशीष दर्शनाचार्य”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून के ग्रीष्मोत्सव के 14 मई 2017 को समापन समारोह में व्याख्यान करते हुए आचार्य आशीष दर्शनाचार्य जी ने कहा कि हम यहां सब एक वृहत परिवार के सदस्यों के रूप में उपस्थित हैं। आप लोग किस प्रकार से आगे बढ़े इस विषय पर आप सब मंथन करते होंगे? आज यहां ‘स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती स्मृति समारोह’ को मनाते हुए इस विषय का भी मंथन करें कि हम अपने इस वृहद आर्य परिवार व अपने निजी परिवारों को कैसे आगे बढ़ायें? परिवार आपस में प्रेम, सौहार्द, आत्मीयता, अपनत्व आदि गुणों को अपनाने से उन्नत होता है। इन गुणों को जीवन में धारण कर परिवार व उसके सदस्य दृण बनते हैं। विद्वान आचार्य आशीष जी ने आगे कहा कि सभा का प्रभावशाली ढंग से संचालन करना और एक समर्थ वक्ता के अच्छे गुण इस सभागार में उपस्थित सभी बन्धुओं में नहीं हैं। उन्होंने कहा कि यदि हम अपने अन्दर छुपे सामथ्र्य का उपयोग सीख लें तो इससे हमारे एक प्रभावशाली सफल वक्ता व प्रचारक बनने की योग्यता में वृद्धि हो सकती है। आचार्य जी ने कहा कि अधिकांश लोगों में व्याख्यान देने के प्रति संकोच का भाव देखा जाता है। हम लोग अपने आस पास के लोगों को अपने ज्ञान के अनुसार सीखाने का प्रयास भी व्याख्यान करने की क्षमता न होने के कारण नहीं कर पाते हैं। इसका कारण हमारे अन्दर संकोच के भाव का होना है। आचार्य जी ने श्रोताओं को कहा कि आपके अन्दर महान सामथ्र्य विद्यमान है। आप सभी लोग बच्चों को अपने पास बैठायें और उन्हें आर्यसमाज व वैदिक धर्म की मान्यताओं को सिखाने का प्रयास करें। इसका आप आज यहां संकल्प लें। यदि यहां बैठे लोग इतना साहस कर लें तो वह अपनी अपनी योग्यता के आधार पर बड़ी संख्या में मिशनरी प्रचारक बन जायेंगे। आचार्य जी ने कहा कि जब सत्य को फैलाने की बात आती है तो हम स्वयं को अर्थ के दान तक ही सीमित कर लेते हैं। यहां उपस्थित सभी लोग अपने भीतर एक सफल व प्रभावशाली वक्ता बनने की सामथ्र्य विकसित करने का प्रयास करें। उन्होंने कहा कि हर व्यक्ति तर्क से ही किसी बात को नहीं समझते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो आपसी मधुर सम्बन्ध बनने पर उपदेशक के व्यवहार को देख कर बात समझते हैं। पहले दूसरों के प्रति अपनत्व का भाव बनाकर उनके प्रति संवेदनशील बनना होगा और उसके बाद ही तर्क से उन्हें अपनी बातों को समझाया जा सकता है। आचार्य जी ने श्रोताओं को अपनी सामथ्र्य पहचानने का आह्वान किया। उन्होंने इसके समर्थन में लोगों को हाथ खड़ा करने को कहा। लोगों ने अपनी स्वीकृति में हाथ खड़े किये और अपनी यह इच्छा प्रकट कि वह अपने अन्दर अच्छा वक्ता बनने की सामथ्र्य का विकास करेंगे और उससे वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे। वैदिक धर्म के प्रचार का अर्थ है सत्य विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों को देश व समाज में फैलाना। इन्हें फैलाने में सभी श्रोतागण आगे आकर कार्य करेंगे।

 आचार्य आशीष दर्शनाचार्य जी ने आर्यसमाज में होने वाले साप्ताहिक सत्संगों की चर्चा की और कहा कि आर्यसमाज में होने वाले यज्ञ, भजन व व्याख्यान में से लगभग 20 मिनट का समय बच्चों वा युवाओं को देना चाहिये जिससे वह माइक पर श्रोताओं के सामने किसी विषय को निःसंकोच भाव से प्रस्तुत करने का अभ्यास कर सके। उन्होंने आर्य समाज के अधिकारियों को यह भी परामर्श दिया कि आर्यसमाज के सत्संगों का संचालन बच्चों वा युवाओं से बदल बदल कर कराना चाहिये जिससे उनमें एक अच्छे वक्ता बनने के गुणों का विकास हो सके। इसके अतिरिक्त भी उन्हें आर्यसमाजों में अन्य प्रकार की अपनी प्रस्तुतियों के लिए समय दिया जाना चाहिये। आर्यसमाज के सत्संगों व अन्य आयोजनों में आर्यसमाज के स्थापित विद्वान वक्ताओं द्वारा अपने व्याख्यान के प्रथम 20 मिनटों में बच्चों व युवाओं से बातें करनी चाहियें और उन्हें उद्बुद्ध करने का प्रयास करना चाहिये। ऐसा करने से आर्यसमाज के सत्संगों में बच्चों व युवाओं की संख्या बढ़ेगी। आचार्य जी ने कहा कि आर्यसमाज के सत्संग कार्यक्रम यदि इस प्रकार बदलेंगे तो इससे सकारात्मक परिवर्तन आयेगा।

 आचार्य जी ने कहा कि बच्चों के मन में अनेक शंकायें व प्रश्न होते हैं जिनका समाधान उन्हें अपने घर में माता-पिता व अन्य परिवारजनों से नहीं मिल पाता। इसका समाधान हम यहां तपोवन आश्रम में शिविर लगाकर प्रस्तुत करते हैं। बच्चों व युवाओं को उनकी आयु के अनुसार वीडियों दिखाने सहित ज्ञानवृद्धि के अन्य तरीकों से उन्हें वैदिक धर्म व समाज विषयक जानकारी देते हैं जो उन्हें अपनी पुस्तकों व परिवार जनों से प्राप्त नहीं होती। आचार्य जी ने आगामी जून, 2017 में युवक व युवतियों के लिए पृथक पृथक लगाये जा रहे दो शिविरों की जानकारी भी दी। आचार्य जी ने यह भी बताया कि उन्होंने विगत शिविरों में ऐसे बच्चे तैयार किये हैं जो दूसरे बच्चों को प्रशिक्षण दे सकते हैं। आचार्य जी के इस व्याख्यान की मंचस्थ सभी विद्वानों एवं सभागार में उपस्थित श्रोताओं से करतल-ध्वनि कर सराहना एवं प्रशंसा की। उनके बाद आर्य विद्वान श्री उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ जी का प्रवचन हुआ। उन्होंने अपने व्याख्यान के आरम्भ में कहा कि वह आचार्य आशीष जी के विचारों से पूर्णतः सहमत है। आचार्य उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ जी का व्याख्यान हम अपने आगे के लेखों के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**“नई पुस्तक ‘स्वामी नारायण-सम्प्रदाय और मूर्तिपूजा”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

उपर्युक्त पुस्तक कल हमें डाक से प्राप्त हुई है। यह पुस्तक हमें आर्य विद्वान और ऋषि भक्त श्रद्धेय श्री भावेश मेरजा जी ने प्रेषित की है। यह पुस्तक गुटका आकार में है। पुस्तक के लेखक आर्यजगत के वरिष्ठ विद्वान ऋषि भक्त डा. भवानीलाल भारतीय, श्रीगंगानगर निवासी हैं। सारा आर्यजगत डा. भवानीलाल भारतीय जी के व्यक्तित्व व कृतित्व से परिचित है। इस पुस्तक का प्रकाशन आर्य साहित्य के प्रमुख प्रकाशक **‘श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी-राजस्थान’** ने किया है। 64 पृष्ठों वाली इस पुस्तक का मूल्य मात्र 10.00 रूपये है। प्रकाशक द्वारा यह पुस्तक 400 रूपये सैकड़ा की मूल्य दर से भी उपलब्ध कराई जा रही है। पुस्तक के अन्त में आर्यसमाज के दस नियम भी दिये गये हैं।

 पुस्तक का परिचय व महत्ता के विषय में **‘भूमिका’** में प्रकाश डाला गया है। भूमिका लेखक का नाम पुस्तक में नहीं दिया गया है। हमें लगता है कि यह भूमिका आर्य विद्वान श्री भावेश मेरजा जी द्वारा लिखित हो सकती है और इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय भी उन्हीं को प्रतीत होता है। पुस्तक व भूमिका दोनों महत्वपूर्ण हैं। हम यहां पाठकों की जानकारी के लिए पूरी भूमिका प्रस्तुत कर रहे हैं।

 भूमिका में लिखा है कि ‘आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी (1825-1883 ई0) ने समस्त मानव जाति के ऐक्य एवं सर्वविध कल्याण के लिए ऋग्वेदादि चार मन्त्र संहिताओं को ईश्वर प्रणीत घोषित कर उन्हीं की शिक्षाओं के अनुसार अपने **‘सत्यार्थप्रकाश’** आदि ग्रन्थों की रचना की है। स्वामी जी मानव ऐक्य के पुरोधा थे। सत्य ओर न्याय के आधार पर मानव ऐक्य के स्वप्न को साकार करने के लिए वे आजीवन पुरुषार्थ करते रहे और इसी कार्य को करते हए उन्होंने अपना बलिदान दिया। स्वामी जी ने वेद और ऋषि-मुनियों द्वारा प्रणीत वेदानुकूल ग्रन्थों की सार्वभौम उदात्त शिक्षाओं के वैश्विक प्रचार-प्रसार के लिए आर्यसमाज की स्थापना की।

 स्वामी जी की दृष्टि में विभिन्न मत-पन्थ-सम्प्रदायों के कारण सत्य सनातन वेद धर्म की महती हानि हई है। अतः स्वामी जी ने धर्म या अध्यात्म के नाम पर खड़े किए गए व्यक्ति केन्द्रित मत-पन्थ-सम्प्रदायों की वेद-विरुद्ध मान्यताओं तथा क्रियाकलापों का खण्डन कर इन मत-पन्थ-सम्प्रदायों को समूल नष्ट करने का अभियान चलाया। इसी अभियान के अन्तर्गत उन्होंने **‘शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण’** (अथवा **‘स्वामी नारायण मत खण्डन’**) नामक एक लघु ग्रन्थ लिखा जिसमें गुजरात में पैदा हुए स्वामी नारायण सम्प्रदाय की मूल पुस्तक **‘शिक्षा-पत्री’** की प्रमाण-पुरस्सर समालोचना की गई है। स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के 11वें समुल्लास में भी स्वामी सहजानन्द (1781-1830 ई0) द्वारा चलाए गए इस सम्प्रदाय की समीक्षा की है।

 आज यह स्वामी नारायण सम्प्रदाय केवल गुजरात में सीमित नहीं रहा है। देश के कई अन्य प्रान्तों, महानगरों में तथा विश्व के अनेक देशों में इस सम्प्रदाय के मन्दिर बन गए हैं। दिल्ली का प्रसिद्ध अक्षरधाम भी इसी सम्प्रदाय का एक प्रमुख केन्द्र है।

 इसी सम्प्रदाय के एक विद्वान् ने **‘सनातन धर्म अभिगम’** नामक अपनी एक गुजराती पुस्तक में मूर्तिपूजा का समर्थन करने का प्रयास किया है। आर्यसमाज के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् लेखक प्रो0 (डा0) भवानीलाल जी भारतीय ने **‘सनातन धर्म अभिगम’** के मूर्तिपूजा प्रकरण की तार्किक समालोचना **‘स्वामी नारायण मत और मूर्तिपूजा’** लेख के रूप में लिखी है, जिसका प्रकाशन **‘आर्यजगत्’** साप्ताहिक के दो अंकों (दि0 16-22 तथा 23-29 अक्टूबर 2016) में किया गया है। पाठकों का ज्ञानवर्धन हो सके इस प्रयोजन से डा0 भारतीय जी के इस लेख को इस पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया जाता है।

 इसी के साथ-साथ डा0 भारतीय जी प्रणीत **‘भारतवर्षीय मत मतान्तर समीक्षा’** नामक ग्रन्थ का **‘स्वामी नारायण मत खण्डन’** विषयक प्रकारण तथा स्वामी दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के 11वें समुल्लास में प्रस्तुत स्वामी नारायण की समीक्षा विषयक प्रकरण का भी इस पुस्तिका में समावेश किया गया है।

 आशा है कि इस पुस्तिका के तटस्थ अध्ययन से पाठकों को स्वामी नारायण मत विषयक यथार्थ जानकारी प्राप्त होगी।’ (भूमिका यहां पर समाप्त होती है।)

 हमें यह पुस्तक कल 24 मई 2017 को डाक में मिली। कल ही हमने इसे आद्योपान्त पढ़ा। पुस्तक अपने विषय पर प्रमाणित पुस्तक है। यह वेद और आर्यसमाज की मान्यताओें के अनुरूप है। इससे नारायण स्वामी मत द्वारा प्रचारित मूर्तिपूजा विषयक समस्त भ्रान्तियों का निराकरण व समाधान हो जाता है। स्वामी नारायण मत के अनुयायी साधु श्री हरिदास द्वारा अपनी पुस्तक़ **‘सनातन धर्म अभिगम’** में मूर्तिपूजा को लेकर जिन भ्रमों का प्रसारण व प्रचार किया गया है, उसका सप्रमाण खण्डन डा. भारतीय जी की इस पुस्तक की सामग्री व उनके लेख हुआ है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य ही सत्य को मानना, मनवाना व प्रचार करना तथा असत्य को छोड़ना, छुड़वाना व निष्पक्ष भाव से समाज हित में खण्डन करना आदि है। यह पुस्तक अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रही है। इसके प्रकाशन के लिए हम इसके प्रकाशक श्री प्रभाकरदेव आर्य जी को साधुवाद देते हैं। इसके सम्पादक महोदय जी को भी उनके प्रशंसनीय सत्प्रयास के लिए हम धन्यवाद करते हैं।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**